AGPE THE ROYAL GONDWANA RESEARCH JOURNAL
OF HISTORY, SCIENCE, ECONOMIC, POLITICAL AND SOCIAL SCIENCE
ISSN (E): 2583-1348 | A Peer reviewed | An Open Access & Indexed
Volume 06 | Issue 06 | June 2025 | www.agpegondwanajournal.co.in | Page No. 14-20

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का आधार : गुरुकुल व्यवस्था एवं गुरु-शिष्य परंपरा

डॉ. सुषमा नेताम
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग
पंडित शंभूनाथ शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म. प्र.)

शोध सारांश -

प्राचीनकाल से अनवरत रूप से गतिमान गुरु-शिष्य परंपरा ही भारतीय ज्ञान प्रणाली का मूल आधार रहा है। अपने परिष्कृत ज्ञान को ऋषि - मुनियों द्वारा अपने शिष्यों को प्रदान किया जाना, गुरु और शिष्य के मध्य ज्ञान के उत्तराधिकार को आलोकित करता है। आज भी गुरु-शिष्य परंपरा अपने नवीनतम स्वरूप में जीवित है जो कि शिक्षक - छात्र के रूप में प्रेषित परिष्कृत ज्ञान को अगली पीढ़ी तक प्रवाहमान कर रहे हैं। प्राचीनकाल की गुरुकुल व्यवस्था आज के आवासीय विद्यालय के समान दिखलाई पड़ती है जहां न सिर्फ गुरु और शिष्य के मध्य न सिर्फ वैदिक ज्ञान बल्कि व्यवहारिक समझ का भी विकास होता था। प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के रूप में स्थापित रही गुरुकुल व्यवस्था एवं इस व्यवस्था को सुदृढ़ रूप प्रदान करने वाली गुरु-शिष्य परंपरा का अध्ययन किया गया है। इस शोध पत्र में विश्लेष्णात्मक शोध प्रविधि का अनुसरण करते हुये विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों, सहायक ग्रन्थों, शोधपत्रों का अध्ययन किया गया है। विभिन्न प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है। गुरु-शिष्य परंपरा के विभिन्न सामाजिक एवं व्यवहारिक उपादानों का गहन विवेचन करने के पश्चात तथ्यों एवं विचारों को इसमें समाहित कर निष्पक्ष निष्कर्ष प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द – गुरुकुल, गुरु-शिष्य परंपरा, आश्रम, वैदिक शिक्षा।

भारतवर्ष की अपनी अनेक विलक्षण विशेषताएं हैं, यथा प्राचीन काल से लेकर आज भी प्रवाहमान अपनी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के कारण विश्व के आकर्षणों का केंद्र है और कई बातों में वह अपनी उत्कृष्ट शिक्षा प्रदान कर रहा है। आज भारत आध्यात्म, ज्ञान एवं परम्पराओं के क्षेत्र में विश्व गुरु है। भारतवर्ष में स्थापित अनेकों सिद्धांतों में आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार की गुरु-शिष्य परंपरा भारत की अपनी विषयवस्तु है और विभिन्न वैदिक एवं सामाजिक ज्ञान धाराओं की ज्योति को जलाये रखना का यही गुरु-शिष्य परंपरा मुख्य आधार है।

मानविकी इतिहास में कुछ शैक्षिक परंपराएँ ज्ञान हस्तांतरण के अपने अनूठे दृष्टिकोण के लिए जानी जाती हैं, ऐसी

CORRESPONDING AUTHOR:	RESEARCH ARTICLE
Dr. Sushma Netam Asst. Professor, Dept. of History Pt.Shambhunath Shukla University, Shahdol, M.P. E-mail: drsnhpr87@gmail.com	

ही एक प्रणाली है गुरु शिष्य परंपरा। सहस्राब्दियों से चली आ रही यह प्राचीन भारतीय परंपरा, न केवल शिक्षा से परे है वरन शिक्षक और छात्र के बीच एक गहन आध्यात्मिक और बौद्धिक बंधन को बढ़ावा देती है। गुरु शिष्य परंपरा के केंद्र में गुरु की अवधारणा निहित है, जो वर्तमान शिक्षक की पारंपरिक धारणा से परे है । गुरु - एक सम्मानित प्रेरणास्त्रोत, एक मार्गदर्शक होता है जिसके पास न केवल ज्ञान होता है बल्कि अनुभव और आत्म-साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त ज्ञान भी होता है। शिष्य, एक निष्क्रिय शिक्षार्थी नहीं बल्कि एक सक्रिय भागीदार होता है, जो गुरु के पास अत्यंत स्नेह, सम्मान, भक्ति और ज्ञान की भूभुक्षा के साथ आता है। गुरुकुल के वातावरण ने एक घनिष्ठ संबंध को बढ़ावा दिया, जिससे शिष्य न केवल सैद्धांतिक अवधारणाओं को सीख सकता है, बल्कि गुरु के दैनिक जीवन का अवलोकन भी कर सकता है , और उनके मूल्यों और जीवन जीने के तरीके को आत्मसात कर सकता है।

गुरुकुल का अर्थ और परिभाषा

गुरुकुल से आशय ऐसे विद्यालय से है जहाँ विद्यार्थी अपने परिवार से दूर रहकर, गुरु के परिवार का हिस्सा बनकर शिक्षा प्राप्त करता है। "गुरु" और "कुल" शब्दों के मिलान से बना शब्द "गुरुकुल" अपने आप में ही इसका व्यापक अर्थ को स्पष्ट करता है - गुरु का घर या परिवार। प्राचीन भारत में गुरुकुल ही अध्ययन-अध्यापन के प्रधान केंद्र हुआ करते थे। ये गुरुकुल आमतौर पर प्रकृति के बीच स्थित होते थे, जहां शांतिपूर्ण और प्राकृतिक वातावरण में विद्यार्थी अपनी शिक्षा प्राप्त करते थे।

गुरुकुल में रहकर विद्यार्थी न केवल विभिन्न शस्त्र-शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करते थे, बल्कि जीवन के व्यावहारिक पहलुओं को भी सीखते थे। गुरुकुल में अध्यापन एक अनुशासित और सादगीपूर्ण जीवन अपनाने का प्रशिक्षण भी था। विद्यार्थी गुरु के मार्गदर्शन में स्वाध्याय (स्वयं का अध्ययन) करते थे, जो आत्म-जागरूकता और आत्म-विकास की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा था।

गुरु-शिष्य परम्परा

'परम्परा' का शाब्दिक अर्थ है - 'बिना व्यवधान के शृंखला रूप में जारी रहना'। परम्परा-प्रणाली में किसी विषय या उपविषय का ज्ञान बिना किसी परिवर्तन के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ियों में संचारित होता रहता है।

गुरु-शिष्य परम्परा की उत्पत्ति वैदिक युग में देखी जा सकती है, जहाँ ऋषि अपने शिष्यों को एकांत वन आश्रमों में मौखिक रूप से ज्ञान प्रदान करते थे। यह परंपरा केवल अकादमिक शिक्षा के बारे में नहीं थी, बल्कि नैतिक मूल्यों, अनुशासन और आध्यात्मिक ज्ञान को विकसित करने के बारे में भी थी। यह रिश्ता आपसी सम्मान, विश्वास और भक्ति पर आधारित था। ऋषियों की श्रुति परंपरा उनके गुरुकुलों से संचालित से संचालित होकर एक प्रवाह पुंज की भांति समस्त संसार में प्रवाहमान हुयी।

गुरुकुल की संरचना और प्रकार

प्राचीन भारत के गुरुकुलों के अंतर्गत तीन प्रकार की शिक्षा संस्थाएँ थीं - गुरुकुल, परिषद और तपस्थली। गुरुकुल में विद्यार्थी आश्रम में गुरु के साथ रहकर विद्याध्ययन करते थे। परिषद में विशेषज्ञों द्वारा शिक्षा दी जाती थी। और तपस्थली ऐसे स्थान थे जहाँ बड़े-बड़े सम्मेलन होते थे। गुरुकुल छोटे अथवा बड़े प्रकार के भी होते थे। कुछ गुरुकुल विषय विशेष के लिए प्रसिद्ध होते थे, जैसे- शस्त्र विद्या, साहित्य, धर्मशास्त्र, तर्क आदि । दूर-दूर से ब्रह्मचारी विद्यार्थी, अथवा सत्यान्वेषी परिव्राजक अपनी अपनी शिक्षाओं को पूर्ण करने इन गुरुकुलों में जाते थे। गुरुकुल में विद्यार्थियों को रहने, भोजन और शिक्षा की सुविधाएँ निःशुल्क प्रदान की जाती थीं और बदले में वे गुरु के दैनिक कार्यों में सहायता करते थे।

प्रसिद्ध गुरुकुल और उनका इतिहास

प्राचीन भारत में शिक्षा का महत्व इतना अधिक था कि इसे मनुष्य के चार आश्रमों में से एक, ब्रह्मचर्य **आश्रम**, के रूप में स्थान दिया गया था। भारत के प्राचीन इतिहास में गुरुकुलों का स्थान पवित्र स्थली के समान था। प्रसिद्ध आचार्यों के गुरुकुल में पढ़े हुए छात्रों का सब जगह बहुत सम्मान होता था। उदाहरण के लिए, श्रीराम ने ऋषि वशिष्ठमुनि के गुरुकुल में रह कर शिक्षा प्राप्त की थी और पाण्डवों ने ऋषिद्रोण के यहाँ रह कर शिक्षा प्राप्त की थी।

भारतवर्ष के गुरुकुल आश्रमों के आचार्यों को उपाध्याय और प्रधान आचार्य को 'कुलपति' या 'महोपाध्याय' कहा जाता था। रामायण काल में वशिष्ठ का बृहद् आश्रम था जहाँ राजा दिलीप तपश्चर्या करने गये थे, जहाँ विश्वामित्र को ब्रह्मत्व प्राप्त हुआ था। इस प्रकार का एक और प्रसिद्ध आश्रम प्रयाग में भारद्वाज मुनि का था। संदीपनी ऋषि के आश्रम में कृष्ण और बलराम ने शिक्षा प्राप्त की। इन गुरुकुलों में न केवल शास्त्रों का ज्ञान दिया जाता था, बल्कि विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व विकास पर भी ध्यान दिया जाता था।

गुरु-शिष्य संबंध

गुरु और शिष्य (शिष्य) के बीच का संबंध गहरे पारस्परिक सम्मान और प्रतिबद्धता का द्योतक होता है। शिष्य गुरु के पास विनम्रता और सीखने की उत्सुकता के साथ जाता है, जबकि गुरु करुणा और समर्पण के साथ ज्ञान प्रदान करता है। इस संबंध को '**उपनयन**' नामक समारोह के माध्यम से औपचारिक रूप दिया जाता है, जो गुरु के संरक्षण में वैदिक अध्ययन में शिष्य की दीक्षा को चिह्नित करता है। वैदिक परंपरा में गुरु की अवधारणा का अत्यधिक महत्व है, जो कि हिंदू दर्शन और आध्यात्मिकता की नींव स्थापित करती है। गुरु को न केवल एक शिक्षक के रूप में बल्कि एक मार्गदर्शक, संरक्षक, अभिभावक और आध्यात्मिक नेतृत्वकर्ता के रूप में माना जाता है जो ज्ञान और आत्मज्ञान की ओर शिष्य की यात्रा में उनकी अपरिहार्य भूमिका निभाता है।

गुरु शिष्य परंपरा में, गुरु का बहुत महत्व एवं स्थान सर्वोपरि है। गुरु को एक संरक्षक, मार्गदर्शक और आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक के रूप में देखा जाता है जो शिष्य के लिए ज्ञान और बुद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है। गुरु की भूमिका सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान करने से कहीं आगे हो जाती है। वे शिष्य के चरित्र और व्यवहार को आकार देने के लिए जिम्मेदार होते हैं। गुरु की शिक्षाएँ अक्सर शिष्य की व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुरूप अनुकूलित होती हैं।

दूसरी ओर, शिष्य विनम्रता, सम्मान और सीखने की उत्सुकता के साथ गुरु के पास जाता है। सीखने की प्रक्रिया में कठोर अनुशासन, समर्पण और आज्ञाकारिता शामिल है। शिष्य से अपेक्षा की जाती है कि वह शिक्षाओं का अनुकरण करे और उन्हें न केवल बौद्धिक रूप से बल्कि आध्यात्मिक और व्यावहारिक रूप से भी अपने जीवन में आत्मसात करे। यह संबंध सहजीवी है, जहाँ गुरु ज्ञान और मार्गदर्शन प्रदान करता है और शिष्य अगाध निष्ठा और सेवा प्रदान करता है।

वेदों में गुरु का महात्म्य

वेदों में गुरु का महत्त्व अत्यंत उच्च स्थान पर स्थापित किया गया है। वैदिक परंपरा में गुरु को वेदों में निहित दिव्य ज्ञान और शिष्य के बीच सेतु या मध्यस्थ माना गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जैसे गूढ़ और गहन ग्रंथों की व्याख्या तथा उनके जटिल सूत्रों को सरल व सुलभ बनाकर शिष्य को प्रदान करने का कार्य गुरु ही करते हैं। गुरु केवल शैक्षणिक ज्ञान के संवाहक नहीं, अपितु आध्यात्मिक पथप्रदर्शक भी होते थे, जो शिष्य को आत्मज्ञान और मोक्ष के पथ पर अग्रसर करते हैं। वेदों में धर्म, सत्य और संयम जैसे नैतिक मूल्यों के पालन पर विशेष बल दिया गया है, और गुरु ही वह हैं

जो इन मूल्यों को शिष्य के जीवन में जागृत करते हैं, उनके आचरण को वैदिक मर्यादाओं के अनुरूप दिशा देते हैं। गुरु स्वयं वेदों के जीवंत अवतार माने जाते हैं। उनका जीवन, आचरण और व्यवहार शिष्य के लिए एक आदर्श बन जाता है, जो वेदों की शिक्षाओं को व्यावहारिक रूप में देखने और अपनाने का अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार वेदों में गुरु को ज्ञान, धर्म और मोक्ष के मूल स्तंभ के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

1. ऋग्वेद: सर्वप्राचीन वैदिक ग्रंथों में से एक ऋग्वेद के अनेकों सूक्तों में शिक्षक एवं शिक्षा के महत्व के बारे में बताया गया है। उदाहरण के लिए, ऋग्वेद 1.1.5 में गुरु को मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में संदर्भित किया गया है जो शिष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाता है।

2. तैत्तिरीय उपनिषद: प्रमुख दार्शनिक ग्रंथ, तैत्तिरीय उपनिषद, गुरु के गुणों का गुणगान करता है और ज्ञान की खोज में शिक्षक की आवश्यकता पर जोर देता है। यह बताता है कि गुरु सर्वोच्च ज्ञान प्रदान करता है, और शिष्य को आत्म-साक्षात्कार और परम मुक्ति की ओर ले जाता है।

3. मुंडक उपनिषद: मुंडक उपनिषद ब्रह्म (परम वास्तविकता) के ज्ञान को प्राप्त करने में गुरु की अपरिहार्य भूमिका पर प्रकाश डालता है। यह बताता है कि यह गहन ज्ञान केवल एक सिद्ध गुरु की कृपा और मार्गदर्शन के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है।

वैदिक परंपरा में, गुरु को लगभग ईश्वर के बराबर माना जाता है। कई शास्त्र और ग्रंथ इस विचार को रेखांकित करते हैं कि गुरु ही ईश्वर की अभिव्यक्ति है। संस्कृत श्लोकों में गुरु की महत्ता निम्न प्रकार से वर्णित हैं।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

भावार्थ: गुरु ही ब्रह्मा हैं (सृष्टिकर्ता), गुरु ही विष्णु हैं (पालक), और गुरु ही महेश्वर (शिव – संहारकर्ता) हैं। गुरु ही साक्षात् परब्रह्म (परम सत्य) हैं, ऐसे श्रीगुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।

यह श्लोक गुरु की महिमा को त्रिदेवों के साथ जोड़कर दिखाता है कि गुरु न केवल ज्ञानदाता हैं, अपितु स्वयं सृष्टि, पालन और संहार के सिद्धांतों के प्रतिनिधि हैं। यह मंत्र भारतीय ज्ञान-परंपरा की उस धारणा को पुष्ट करता है जहाँ गुरु को 'साक्षात् ईश्वर' का रूप माना गया है। गुरु के चरणों में नत होकर ही शिष्य जीवन-मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है।

ध्यानमूलं गुरुमूर्तिम पूजा मूलं गुरोःपदम्।
मंत्र मूलं गुरुर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरुकृपा॥

भावार्थ: ध्यान का मूल गुरु की मूर्ति है, पूजा का मूल गुरु के चरण हैं, मंत्र का मूल गुरु का वचन है, और मोक्ष का मूल गुरु की कृपा है।

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि आध्यात्मिक साधना के प्रत्येक अंग में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। ध्यान, पूजन, मंत्र और मोक्ष – इन चारों का सार गुरु के बिना अधूरा है। गुरु न केवल बाह्य रूप से पथप्रदर्शक होते हैं, बल्कि अंतरात्मा के भीतर भी चेतना को जाग्रत करने वाले होते हैं

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यं विना न पश्यन्ति योगिनः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥

भावार्थ: मैं उस गुरु को नित्य नमस्कार करता हूँ जो बोध (ज्ञान) स्वरूप हैं, शंकर के रूप में विराजमान हैं। जिनके बिना योगीजन अपने हृदय में स्थित ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकते।

इस श्लोक में गुरु को 'बोधमय' अर्थात् ज्ञानस्वरूप कहा गया है। गुरु केवल व्यक्ति नहीं, बल्कि ज्ञान, विवेक और परम चैतन्य के प्रतिनिधि होते हैं। यह श्लोक गुरु की महत्ता को दर्शाते हुए यह संदेश देता है कि आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया में गुरु का स्थान अपरिहार्य है। वे प्रकाशक हैं उस दिव्य ज्योति के, जो स्वयं हृदय में विद्यमान होते हुए भी गुरु के बिना दृष्टिगोचर नहीं होती।

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपनो, जिन गोविंद दियो बताय॥

भावार्थ: यदि एक साथ मेरे सामने गुरु और गोविंद (भगवान) दोनों उपस्थित हों, तो मैं पहले किसके चरण स्पर्श करूँ? मैं तो अपने गुरु के ही बलिहारी जाऊँ, जिन्होंने मुझे गोविंद (ईश्वर) से मिलाया।

इस दोहे में कबीरदास जी स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर से पहले गुरु का स्थान है, क्योंकि वही गुरु है जो अज्ञान के अंधकार से निकालकर ईश्वर का परिचय कराता है। गुरु ही वह सेतु हैं जो जीवात्मा को परमात्मा से जोड़ते हैं। गुरु के बिना ईश्वर की अनुभूति असंभव है। इसलिए गुरु की महिमा, भगवान से भी बढ़कर है। यह दोहा हमें यह सिखाता है कि सच्चे ज्ञान की प्राप्ति, भक्ति का आरंभ और मोक्ष की यात्रा – इन सबका प्रथम द्वार "गुरु" ही हैं।

आज के तीव्र वेगमान से चलित डिजिटल संसार में, गुरु-शिष्य परम्परा महत्वपूर्ण प्रासंगिकता रखती है। प्रौद्योगिकी और आधुनिक शिक्षा प्रणालियों में प्रगति के बावजूद, इस प्राचीन परंपरा का सार कई मायनों में प्रेरित करना जारी रखता है। संस्थान और व्यक्ति व्यक्तिगत शिक्षा, मार्गदर्शन और समग्र विकास के महत्व को तेज़ी से पहचान रहे हैं। गहन शिक्षा और व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा देने के लिए गुरु-शिष्य परम्परा के सिद्धांतों को समकालीन शैक्षिक प्रथाओं में एकीकृत किया जा रहा है। गुरु-शिष्य परम्परा के उदाहरण ऋषि व्यास और ऋषि शुक: सबसे प्रसिद्ध उदाहरणों में से एक महाभारत के रचयिता ऋषि व्यास और उनके पुत्र और शिष्य ऋषि शुक का है। उनका रिश्ता इस परंपरा के माध्यम से दी जाने वाली आध्यात्मिक और दार्शनिक शिक्षा की गहराई को दर्शाता है। द्रोणाचार्य और अर्जुन: महाकाव्य महाभारत में, महान योद्धा अर्जुन और उनके गुरु द्रोणाचार्य के बीच का रिश्ता समर्पण, अनुशासन और मार्शल कौशल के हस्तांतरण के महत्व को उजागर करता है। स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस: हाल के इतिहास में, स्वामी विवेकानंद और उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस के बीच का बंधन आध्यात्मिक ज्ञान और सामाजिक सुधार में गुरु-शिष्य संबंध की परिवर्तनकारी शक्ति का प्रमाण है।

गुरु-शिष्य परम्परा की मुख्य विशेषताएँ

1. समग्र शिक्षा: गुरु-शिष्य परम्परा समग्र शिक्षा पर जोर देती है, जिसमें न केवल अकादमिक शिक्षा बल्कि आध्यात्मिक, नैतिक और भावनात्मक विकास भी शामिल है। इसका उद्देश्य एक ऐसे व्यक्ति का निर्माण करना है जो ज्ञानवान, बुद्धिमान और नैतिक रूप से ईमानदार हो।
2. व्यक्तिगत शिक्षा: गुरु-शिष्य परंपरा में शिक्षा अत्यधिक व्यक्तिगत होती है। गुरु शिष्य की व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुसार शिक्षाएँ तैयार करता है, जिससे विषय-वस्तु की गहरी और सार्थक समझ सुनिश्चित होती है।
3. आजीवन संबंध: गुरु और शिष्य के बीच का संबंध आजीवन होता है, जो औपचारिक शिक्षा से परे होता है। यह आपसी सम्मान, विश्वास और भक्ति पर आधारित है, जिसमें गुरु अक्सर शिष्य के व्यक्तिगत और आध्यात्मिक विकास में उनके पूरे जीवन में भूमिका निभाते हैं।

4. मौखिक परंपरा: ज्ञान मौखिक रूप से, प्रत्यक्ष बातचीत, चर्चा और व्यावहारिक प्रदर्शनों के माध्यम से प्रसारित किया जाता है। यह विधि सुनिश्चित करती है कि सीखना अनुभवात्मक और गहराई से आत्मसात हो।गुरु-शिष्य परंपरा भारत की ज्ञान-परंपरा की आत्मा रही है, जहाँ शिक्षा केवल सूचनाओं का संप्रेषण नहीं, अपितु चरित्र निर्माण, आत्मविकास और जीवन-दर्शन का अभ्यास था। गुरु के सान्निध्य में शिष्य को गहन, व्यक्तिगत व अनुभवात्मक शिक्षा मिलती थी, जो आजीवन नैतिकता और मार्गदर्शन का आधार बनती थी।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के कई सिद्धांत और मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं और आधुनिक शिक्षा प्रणाली को प्रभावित करते हैं। शिक्षक-छात्र संबंध का महत्व, अनुशासन पर जोर, समग्र विकास की अवधारणा, और शिक्षा को जीवन का अभिन्न अंग मानना - ये सभी प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली से लिए गए सिद्धांत हैं। भारत में और विश्व भर में कई शैक्षिक संस्थान गुरुकुल और गुरु-शिष्य परंपरा के सिद्धांतों को अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में समाहित कर रहे हैं। ये संस्थान न केवल अकादमिक ज्ञान पर, बल्कि छात्रों के चरित्र निर्माण, नैतिक मूल्यों और आध्यात्मिक विकास पर भी जोर देते हैं।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, गुरुकुल व्यवस्था के कई तत्वों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समाहित किया गया है। आवासीय विद्यालय, छात्र-शिक्षक संबंध, अनुशासन पर जोर, और व्यक्तित्व विकास विषय की अवधारणा गुरुकुल व्यवस्था से ही प्रेरित है। कई आधुनिक शैक्षिक संस्थान भी गुरुकुल के मॉडल पर काम कर रहे हैं, जहां पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा का समन्वय किया जाता है। इन संस्थानों का उद्देश्य न केवल छात्रों को अकादमिक ज्ञान प्रदान करना है, बल्कि उनके चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व विकास पर भी ध्यान देना है। शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्ति नहीं, बल्कि व्यक्तित्व का समग्र विकास होना चाहिए। शिक्षा में अनुशासन, नैतिक मूल्यों और चरित्र निर्माण पर जोर दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत यह था कि शिक्षा समाज की सेवा के लिए होनी चाहिए। आधुनिक समय में, जबकि शिक्षा के उद्देश्य और तरीके बदल गए हैं, प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के कई सिद्धांत और मूल्य अभी भी प्रासंगिक हैं। शिक्षक-छात्र संबंध का महत्व, अनुशासन और समर्पण का महत्व, और शिक्षा को जीवन का अभिन्न अंग मानना - ये सभी सिद्धांत आज भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने वे प्राचीन काल में थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. गुप्त, न. ल. (2005), प्राचीन भारतीय शिक्षा और शिक्षा शास्त्री।
2. श्रीवास्तव, कृ. च. (2004),प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति।
3. चन्द, ज. (2008), प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में शिक्षा।
4. सिंह, सुनीता, (2006), प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था।
5. कुमार, कृ. (1999,प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति।
6. मुखर्जी, राधाकुमुद, (2003),एन्सिएण्ट इंडियन एजुकेशन: ब्राह्मणिकल एंड बुद्धिस्ट।
7. शंकराचार्य। (वि.सं.),प्रश्नोतरी - 7 ।
8. हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,सांस्कृतिक सृजन, (पृ. 105), इलाहाबाद।
9. अल्तेकर, ए. एस. (वि.सं.),एजुकेशन इन एन्सिएण्ट इंडिया।

10. आचार्य, लक्ष्मीचन्द,(वि.सं.),भारतवर्ष की वैदिक कालीन शिक्षा पद्धति,संजय प्रकाशन, दिल्ली।
11. अग्रवाल, बी. बी. (वि.सं.),आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएं,विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
12. बाजपेयी, एल. बी. (वि.सं.),भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक प्रवृत्तियाँ,आलोक प्रकाशन, लखनऊ।
13. जायसवाल, सीताराम,(वि.सं.),भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएं,प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ।
14. झा, सुरेन्द्र,(वि. सं.),प्राचीन शिक्षा पद्धति,आशुतोष प्रकाशन, लखनऊ।
15. कौल, ओ. एन. (21 जुलाई, 2024),गुरु शिष्य परम्परा,स्टेट टाइम्स (सम्पादकीय)।
16. सच्चिदानंद, गुरु वर्तमान वास्तविकता के रूप में, उद्धृत: श्री वंदना, (1975) विद्याज्योति, खंड 39, पृ. 356।
17. सरस्वती, स्वामी असंगानंद, (1984),गुरु-शिष्य संबंध पर प्रकाश (पृ. 65), बिहार स्कूल ऑफ योग।

■ ■ ■